धर्म प्रचार

भाग –1

किसी ख्याल, कल्पना या ज्ञान को जनता तक पहुँचाने तथा उनके मन पर असर डाल कर किसी विशेष निश्चय या ज्ञान की ओर **प्रेरित करने या कायल करने को प्रचार कहते हैं ।**

आजकल **प्रचार** करने के कई साधन प्रयोग किये जाते हैं–

1.शारीरिक साधन–जैसे इकट्ठे हो कर सत्संग करना, कीरतन, कथा, लैक्चर, पाठ पूजा तथा अन्य अनेक कर्म–कांडों द्वारा प्रचार करना ।

2.मानसिक साधन–धार्मिक निश्चय का ज्ञान या **लिखित प्रचार** करना, जैसे धार्मित ग्रंथों, पुस्तकों या पत्रिकाओं आदि के द्वारा ।

3.वैज्ञानिक साधन–रेडियो, टी.वी., टेप–रिकार्डर आदि साधनों से कथा–कीरतन द्वारा प्रचार करना ।

4.व्यक्तित्व और वातावरण के प्रभाव द्वारा प्रचार–यह अनदेखे तरीके से **गुप्त रूप में** सहज ही **अत्यंत गहरा प्रभावशाली प्रचार** का माध्यम है।

प्रथम तीन प्रचार के साधन स्थूल दूनिया या 'त्रिगुणों' के साधन हैं तथा इनका असर हमारे मन तथा बुद्धि के दायरे तक सीमित है, जो बदला जा सकता है ।

हम अपनी–अपनी मानसिक, दिमागी तथा संस्कारों की बनावट या रंगत के अनुसार असर लेते–देते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक तथा दिमागी बनावट उस के **पिछले जन्मों के संस्कारों** तथा इस जन्म में बाहर से ग्रहण किये प्रभावों का निचोड़ है। इसलिए प्रत्येक जीव के धार्मिक ज्ञान व धारणाओं में **विलक्षणता** होती है तथा एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। यही कारण है कि एक परिवार के सभी सदस्यों के निश्चय या धारणाओं में मत–भेद या अंतर होता है । **यह धार्मिक भिन्नता** हमारे धार्मिक स्थानों, मार्गदर्शकों तथा प्रचारकों में भी प्रचलित है तथा

इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक धर्म में कई सम्प्रदाय बने हुए है। यह भिन्न – भिन्न सम्प्रदाय अपनी – अपनी धारणाओं अनुसार प्रचार करते रहते हैं। इन **धारणाओं या मर्यादा के** आधार पर इन सम्प्रदाओं में साधारणतया विचारों में टकराव या वाद – विवाद होता रहता है । इस कारण तअस्सुब, घृणा, ऊँच – नीच तथा वैर – विरोध बढ़ते जाते हैं । इस प्रकार के विरोधी अंशों को देरव कर आम जनता में धर्म के विषय में अनेक भ्रांतियां या शंकाएं पैदा हो जाती हैं, जिस कारण आम जनता का धर्म से विश्वास डगमगा जाता है ।

पहले की अपेक्षा, धर्म स्थानों, धार्मिक कर्म – क्रिया तथा धर्म – प्रचार के बाहुल्य के बावजूद आम जन्ता की धर्म की ओर रूचि बढ़ने की अपेक्षा हर ओर से घट रही है तथा गिरावट की ओर जा रही है ।

सिक्रव समाज धर्म से विमुरव होकर केशों का निरादर कर रहा है । यह धार्मिक रोग फौज, पुलिस तथा ड्राईवर पेशे तथा अन्य अनेक श्रेणियों में फैल रहा है । विदेशों में तो केशों का महत्त्व बिल्कुल ही नहीं रहा, वहां तो किसी इक्के – दुक्के पुराने सिक्रव के केश ही नजर आते हैं । नई पीढ़ी तो बिल्कुल ही केशों को तिलांजली दे चुकी है तथा सिक्रवी जीवन व बाणी से कोरी ही नहीं, अपितु रिवल्ली उड़ाने लगी है । इसमें जनता का दोष नहीं, केवल हमारे धार्मिक मार्गदर्शकों की बेपरवाही और **सही धार्मिक प्रचार की कमी है ।**

हमारे धार्मिक स्थान गुरुद्वारे सही अर्थों में गुरबाणी के प्रचार का केन्द्र, होने की **अपेक्षा** निजी वैर – विरोध तथा **गुट्टबंदी के केन्द्र** बन गए हैं । यहां निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए धार्मिक कर्म – क्रिया ही प्रचलित है तथा **मायिकी स्वार्थ और व्यापारिक रुचि** (financial motive and commercialism) ही हर पहलु में प्रधान है ।

अपने छोटे – छोटे निजी स्वार्थों के लिए गुरबाणी का प्रयोग करके हमने इसके महत्त्व को कम कर दिया है । जिस कारण हमारे दिल में **इलाही गुरबाणी** की उत्तम – ऊँची तथा पवित्र – पावन **कदर और कीमत नहीं रही ।** यहां तक कि इसे समझने और अपने **जीवन को इसके अनुसार ढालने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती ।** गुरसिक्रवी के हितैषियों तथा सिक्रवी जीवन के उसारुओं (निर्माताओं) के ध्यानयोग्य, निम्नलिरिवत कुछ विचार प्रस्तुत हैं –

1. सर्वप्रथम इस हृदय – वेधक धार्मिक अधोगति के कारणों के विषय में दीर्ध विचारों द्वारा **खोज करने की** आवश्यकता है ।

2. 'यथा राजा तथा प्रजा' के कथन अनुसार, किसी धर्म का महत्त्व, ऊँचाई, प्रकाश या प्रचार उस धर्म के **मुखियों, मार्गदर्शकों तथा प्रचारकों पर निर्भर करता है ।**

अफसोस से कहना पड़ता है कि धर्म प्रचार का मार्ग दर्शन करने वाले बहुत से मुखिया, स्वयं ही गुरबाणी के **'अनुभवी ज्ञान' से अनभिज्ञ होने के कारण,** गुरबाणी या गुरसिक्खी को फोकट या अधूरे दिमागी ज्ञान द्वारा ही प्रस्तुत करते हैं तथा जनता को **कर्म–कांड में ही फंसा कर रखते हैं ।**

गुरबाणी सिक्खों का इष्ट ही नहीं अपितु गुरसिक्खी का **"जीवन आधार"** है । इसमें **"ब्रह्म ज्ञान"**, **नाम** छुपा हुआ है, जिसे गुरसिक्खों ने **खोज कर** केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु सारे जगत को इसका **'प्रकाश'** देना है । परन्तु हमारा सम्बन्ध गुरबाणी के साथ **केवल पाठ–पूजा तक ही सीमित है ।** आवश्यकता इस बात की है कि हम गुरबाणी में छिपे हुए 'नाम', शब्द अमृत आत्मिक प्रकाश के हीरे, रत्न, ज्वाहरात, माणिकों को **'खोज' कर, अपना जीवन 'नाम–रौं' में ढालें** तथा जनता को इस इलाही **'नाम–रोशनी' की प्रेरणा दें।**

हमने गुरबाणी को **विचार कर, उसे व्यवहार में ला कर, इसमें अन्तर–आत्मिक डुबकियाँ लगा कर,** इसकी गहराई में से हीरे, रतन, ज्वाहरात, माणिक **खोजने हैं ।**

'गुरबाणी विचार' के सम्बन्ध में भी हमें कई भ्रम हैं। गुरबाणी पर विचार कई स्तरों पर की जाती है, जैसे–शाब्दिक अर्थ, भाव–अर्थ, आन्तरिक–अर्थ तथा **अनुभवी ज्ञान।** गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियों में इस विचार को यूं दर्शाया गया है–

बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ।।
इह बाणी महा पुरख की निज घरि वासा होइ।। (पृ. ९३५)

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे।।
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरू निसतारे।। (पृ. ९८२)

इह बाणी जो जीअहु जाणै
तिसु अंतरि रवै हरि नामा।। (पृ. ७९७)

हमारी बुद्धि की शक्ति तो शाब्दिक अर्थ या भाव – अर्थ करने तक **सीमित है। अनुभवी अर्थ या 'अनुभवी प्रकाश' तो हमारी बुद्धि की समझ तथा पकड़ से बाहर है।** इसलिए हम गुरबाणी का पूरा – पूरा **आत्मिक लाभ** नहीं ले रहे। दूसरे शब्दों में, हम केवल शब्दों में ही फंसे हुए हैं तथा इन शब्दों के पीछे छुपे इलाही अमृत अथवा **'नाम' से वंचित जा रहे हैं।** यही कारण है कि **हम बुद्धि मंडल में,** मायिकी रंगत द्वारा लथ – पथ हुए, गुरबाणी के 'अनुभवी प्रकाश', 'नाम', 'शबद' से **कोरे, अनजान, लापरवाह तथा बेपरवाह हो कर** अपना जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।

इस प्रकार हमारा **धार्मिक प्रचार भी केवल बुद्धि मंडल तक सीमित है।** वह भी अधूरा, थोथा, फोकट तथा रूखा – सूखा है, जो जिज्ञासुओं की **आत्मिक भावनाओं को छूने (जागृत करने) में असमर्थ है।**

विदेशों में देखा गया है कि अन्य धर्म वाले, अपने धर्म का प्रचार बहुत बड़े पैमाने पर **पूर्ण संगठन, सयानप तथा परिश्रम से कर रहे हैं।**

वह अनगिनत सुन्दर, छोटी – छोटी पत्रिकाएं या पुस्तिकाएं (pamphlets and booklets) घर – घर जाकर या जन – स्थानों (public places) पर बांटते हैं। लोंगो तक धर्म संदेश **पहुंचाने के लिए** रेडियो, टी.वी. तथा वीडियो का अधिक से अधिक प्रयोग करते हैं। ईसाईयों ने अपने ग्रंथ बाईबल तथा अन्य धार्मिक लेखों का अनुवाद पैंतालीस से अधिक भाषाओं में किया और बांटा है। उनके मुकाबले हमारे प्रचार का प्रयास बहुत कम है। यह प्रचार भी किसी केन्द्रीय **मजबूत संगठन** के बिना हो रहा है। जो कुछ किया जा रहा है, वह भी बे – दिला, बे – परवाही में, दिलचस्पी तथा **लगन के बिना, केवल लोक दिखावा या लोक मनोरंजन के लिए ही है।**

हम धार्मिक प्रचार लगन से नहीं करते, क्योंकि हमारी बुद्धि, वृत्ति और रुचि **अन्य अनावश्यक झमेलों में उलझी रहती है।** हमारे अन्दर गुरबाणी के **'आत्मिक प्रकाश' से स्वयं लाभ उठाने तथा जग में फैलाने की तीव्र लगन वाला उत्साह, उमाह, चाव या जोश नहीं है।** हमें अन्य धर्म के प्रचारकों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।

आजकल बहुत सी धार्मिक पुस्तकें लिखी जा रही है, जिन्हें पढ़ कर प्रतीत होता है कि यह **दिमागी ज्ञान** की ही उड़ान है। इनमें आत्मा को **'जागृत करने'**

वाली इलाही किरणों की कोई 'झलक' प्रतीत नहीं होती। पढ़-सुनकर दिमागी शुगल ही होता है। निजी **वास्तविक आत्मिक अनुभव** न होने के कारण इनमें अन्य आत्माओं को **'जागृत' करने** की शक्ति या **सामर्थ्य नहीं होती।**

यही हाल हमारी धार्मिक मासिक पत्रिकाओं, समाचार पत्रों तथा पुस्तकों का है। जो हमारे स्थूल मायिकी मन की **तुच्छ रुचियों** को ही जागृत करती है। हमारे पुस्तकालय, विद्यक संस्थानों तथा स्टडी सर्कल्ज़ का भी यही हाल है। किसी सम्पूर्ण सम्प्रदाय के **आचरण या धार्मिक स्तर की कसौटी यह है,** कि उस सम्प्रदाय में **किस स्तर की पुस्तकों की ग्राहकी** (demand) **है।**

गुरू साहिब के आगमन से पहले भारत में धार्मिक कर्म-कांड रूखे-सूखे तथा स्वार्थी हो गए थे, जिनमें से 'नाम' की **'जीवन-रौं' पूर्णतया ही उड़ चुकी थी।** यह केवल पाखंड और **'मुरदा साधन'** ही बन कर रह गए थे, धार्मिक मुखियों ने धर्म की आड़ में अपने **स्वार्थ** के लिए लूट-खसूट तथा खींच-तान मचा रखी थी। जब **'धर्म के ठेकेदारों'** की ऐसी अधोगति थी, तो आम जनता की धार्मिक अवस्था का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। लोगों की इस दयनीय दशा पर रहम करके गुरू नानक देव जी को संसार में अवतार धारण करना पड़ा। उस समय में प्रचलित फोकट कर्म-कांडों का गुरबाणी में इस प्रकार **खंडन** किया है-

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका।।रहाउ।।
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही।।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही।।
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए।।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए।।
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा।।
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा।।
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता।।
हउ हउ करत बन्धन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता।।
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ।।
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ।। (पृ. ६४२)

किरिआचार करहि खटु करमा इतु राते संसारी।।
अंतरि मैलु न उतरै हउमै बिनु गुर बाजी हारी।। (पृ. ४९५)

खटु सासत बिचरत मुखि गिआना।। पूजा तिलकु तीरथ इसनाना।।
निवली करम आसन चउरासीह इन महि सांति न आवै जीउ।।
अनिक बरख कीए जप तापा।। गवनु कीआ धरती भरमाता।।
इकु खिनु हिरदै सांति न आवै
जोगी बहुड़ि बहुड़ि उठि धावै जीउ।। (पृ. ९८)

संसार की ऐसी धार्मिक अधोगति को सुधारने के लिए, जनता को सही **'आत्मिक सीध'** देकर परमार्थ की ओर प्रेरित करने के लिए, गुरू साहिब ने दस बार शरीर धारण करके, धार्मिक और आत्मिक मार्ग-दर्शन किया और **'धुर की बाणी'** प्रदान की। इसमें अंकित उच्च-उत्तम, पावन-पवित्र **आत्मिक उपदेशों** द्वारा 'जीवन' को सफल करके 'लोक सुखी परलोक सुहेले' करने की विधि सिखाई।

हमारे 'आपे' की तीन तह हैं-तन, मन तथा धुर अन्दर 'आत्मा'। जब तक हमारा तन, मन, भ्रम-भुलाव वाली 'कूड़ी माया' तथा त्रि-गुणों में **अहम्ग्रस्त 'आपे' में विचरण करता है, यह भ्रम-भूला 'आपा'** बाहरमुखी होकर कूड़ी माया के अनेक रंगों का प्रभाव लेता रहता है। उसी के अनुसार सोचता तथा कर्म करता हुआ, 'जो मैं कीआ सो मै पाइआ', के नियम अनुसार दुख-सुख भोगता है। दूसरे शब्दों में हमारा बाहरमुखी **'अहम वाला आपा'** माया की हठीली फौज़-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के अधीन होकर, इनकी रंगत लेकर, इनके सुर (in tune) में 'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु' वाला जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार यह जीव अपने केन्द्र, अपने असली 'आपे' से, अपनी अज्ञानता द्वारा **'टूट कर', 'बेसुर'** होकर, ईश्वर की पवित्र-पावन **इलाही 'बख्शिशों'**-प्रीत, प्रेम, रस, चाव से **वंचित रह जाता है।**

इस प्रकार सारी दुनिया **'अहम्ग्रस्त' भ्रम-भुलाव में ही बही जा रही है।** अपने केन्द्र, 'आत्मा' से बेखबर होकर, **माया की 'सुर'** में जीवन व्यतीत करती है तथा **अपने असली 'आपे' को भूलकर ईश्वर के सुखदायी हुकुम से बेसुर हो गई है।** परन्तु दुखदायी बात तो यह है कि गुरबाणी को मानने वाले तथा प्रचार

करने वालों का भी यही हाल है। उनकी कथनी – करनी में **बहुत अंतर है।** सारी गुरबाणी तो हमें माया की गुलामी से निकलकर, **आत्मा की खुली आज़ादी में** इलाही हुकुम की **'रवानगी' में 'सुर' होने** का उपदेश देती है। इस संबंध में गुरबाणी में स्पष्ट रूप से यूँ ताड़ना की गयी है –

अवर उपदेसै आपि न करै।।
आवत जावत जनमै मरै।। (पृ. २६९)

उपदेसु करै आपि न कमावै ततु सबदु न पछानै।। (पृ. ३८०)

कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परि है रेतु।।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु।। (पृ. १३६९)

हमारी इस समय धार्मिक गिरावट या ग्लानि का सबसे बड़ा कारण यह है, कि हमारी कथनी और करनी में बहुत **बड़ा अन्तर है।** जिस कारण जनता में धर्म से बेपरवाही या **नास्तिकता का अनजाने ही प्रचार हो रहा है।** इसके जिम्मेदार हम **'आस्तिक – नास्तिक'** हैं, जो बाहर से तो **'आस्तिक' दिखाई देते हैं, परन्तु अन्दर से 'नास्तिक' ही होते हैं।** जिन्हें देखकर साधारण जनता धर्म से बेपरवाह तथा लापरवाह होने लगी है और कई श्रद्धावान आस्तिक भी नास्तिकता की ओर बहते जा रहे है।

धर्म को हमने केवल शारीरिक कर्म – कांड तथा दिमागी ज्ञान का शुगल बना रखा है तथा धर्म के केन्द्र **आत्मा से अज्ञान**, बेखबर तथा अनजान होते जा रहे है। यद्यपि सारी गुरबाणी हमें, हमारे मूल परमात्मा की ओर प्रेरित करती है। हमारे पाठ, कीरतन, कथा या भाषण का प्रभाव हमारे मन, **बुद्धि तथा भावनाओं से नीचे नहीं उतरता।** गुरू उपदेशों की रंगत हमारे मन, तन, बुद्धि से नीचे **आत्मा तक उतारने के लिए** सतिगुरू जी ने जो बहुत सरल व आसान विधि बताई है, वह है **'सिमरन'।**

'सिमरन' ही ऐसा एकमात्र गुरबाणी का ताकीदी हुकुम है, जिसे सिक्ख – जगत **ने जान बूझ कर, लापरवाह तथा मचले होकर भली – भांति भुलाया हुआ है।** जब सतिगुरू जी के ताकीदी हुकुम का **पालन** हमारे प्रचारक **खुद नहीं** करते तो साधारण जनता का क्या दोष है?

सर्वप्रथम हमें निम्नलिखित बातें भली – भांति दृढ़ करनी पड़ेंगी –

1. हम शरीर, मन तथा बुद्धि नहीं।
2. इनसे अलग हमारा **वास्तविक 'अस्तित्व' 'आत्मा' है।**
3. हमने अपने शरीर, अहम्ग्रस्त मन तथा बुद्धि को मायिकी गुलामी में से निकाल कर, **आत्मा के परायण करना है।** इस प्रकार उसके हुकुम में सुर रहना है।
4. यह अति कठिन खेल है, परन्तु सतिगुरू जी की कृपा द्वारा, **'मिलु साध संगत भजु केवल नाम' की विधि द्वारा सरल हो जाती है।**

उपरोक्त समस्त विचारों का सारांश यह है कि हमारे बाहर – मुखी कर्म – कांड, पाठ – पूजा तथा धार्मिक प्रचार के प्रयत्न तथा साधन सब 'अहम् की दुनिया' अथवा **'त्रि – गुणों' तक सीमित हैं** तथा हम इन नाममात्र तथा अधूरे (superfluous) **क्रिया – कर्म** में ही **संतुष्ट है।** केवल संतुष्ट ही नहीं **अपितु अहंकार में ग्रस्त** होकर तथा 'भद्र – पुरुष' बनकर दूसरों को तुच्छ निगाहों से देखते हैं। इस प्रकार हम अपने अहम् को ही और सुदृढ़ कर रहे हैं।

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु।। (पृ. ४६६)

भली प्रकार समझने और दृढ़ करने वाली **जरूरी बात यह है** कि हमारे पाठ, पूजा तथा इनके प्रचार के **साधन**, गुरबाणी के अनुभवी प्रकाश – 'नाम', 'शबद' को बूझने, सीझने तथा **पहचानने के लिए –**

प्रयत्न हैं	–	परिणाम नहीं
साधन हैं	–	पूर्णता नहीं
सीढ़ीयाँ हैं	–	शिखर नहीं
यात्रा है	–	मंज़िल नहीं
कक्षाएं हैं	–	डिग्री नहीं
ज्ञान हैं	–	प्रकाश नहीं
क्रिया है	–	परिणाम नहीं

फल है – रस नहीं
फूल है – महक नहीं।

त्रि–गुणों में रहते हुए हमने 'धर्म' का पालन करना है तथा प्रचार भी करना है। परन्तु इसी को 'पूर्णता', मंज़िल तथा 'शिखर' समझ कर यहीं, संतुष्ट होकर, अकड़े नहीं रहना।

हमें यत्न करने का **'हुकुम'** है, और इस यत्न का परिणाम, फल तथा पूर्णता की बख्शिश सतिगुरू की मेहर, गुरप्रसाद अनुसार होती है।

जिस प्रकार के दो–दिले, बेरुखे, श्रदाहीन, अपूर्ण, फोकट, रूखे–सूखे, मृत साधनों का हम प्रयोग कर रहे है, वैसे ही हमें फल–परिणाम मिल रहे हैं। तथा वैसी ही हमारी शारीरिक, मानसिक और धार्मिक अवस्था होती जा रही है। जिस की झलक या रंगत हमारे जीवन के हर पहलू में और संपूर्ण सम्प्रदाय के सदाचार तथा धार्मिक अवस्था में प्रत्यक्ष उभर कर सामने आ रही है।

पुरातन समय के इतिहास से पता चलता है, कि सदियों पहले कई धर्म तथा सभ्यताएं (religious and civilizations) भिन्न–भिन्न देशों इजीप्ट (Egypt), ग्रीस (Greece), ईरान, चीन, तिब्बत तथा भारत में प्रकट हुई तथा जब तक उनमें आत्मिक प्रकाश की 'झलक' अथवा 'नाम' या इलाही जीवन–रौं (Divine current and light) प्रवाहित रही, व उन्नति की ओर (चढ़दी कला में) अग्रसर होते हुए प्रफुल्लित होते रहे। परन्तु कुछ समय उपरांत उनमें 'इलाही प्रकाश' तथा **'जीवन–रौं' धीमी पड़ गई और वह बाहरमुखी धर्म भी अज्ञानता के अंधकार में अलोप होते गए।**

यदि इसी प्रकार सिक्ख सम्प्रदाय भी **गुरबाणी तथा नाम सिमरन के प्रकाश से बेपरवाह और लापरवाह होकर वंचित होता गया** तथा माया के 'भऊजल बिखम असगाहु' की ओर बहता गया तो हमारी भी **वही दशा (हशर) होने का खतरा है।**

इसलिए इस खतरे से बचने के लिए हमें गुरबाणी के इस उपदेश का पालन करने का यत्न करना चाहिए –

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरि नामु धिआवै।।
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रित सरि नावै।।
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै।।
फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै।।
जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिखु गुरू मनि भावै।।
जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै।।
जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै।। (पृ. ३०५)

भाग – 2

इस लेरव के प्रथम भाग में **प्रचार** करने के साधनों की विस्तार से विचार की गई है, परन्तु यह साधन 'त्रि – गुणों' में शारीरिक, मानसिक तथा **बुद्धि मंडल तक ही सीमित हैं।** इससे आगे **आत्मिक मंडल में प्रचार की प्रणाली भिन्न है,** जिसके विषय में, इस द्वितीय भाग में विचार किया जाता है।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि दृष्यमान संसार, इलाही हुकुम या **'कवाउ'** से उत्पन्न हुआ है और चल रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि **रव्याल या विचार ही मूल शक्ति** (primal source) **या बीज है।** रव्यालों के तीव्र, तीक्ष्ण तथा एकाग्र (concentrate) होने से ही इन रव्यालों में **शक्ति उत्पन्न होती है तथा बढ़ती है जिसे मानसिक शक्ति** कहा जाता है। इसी तीव्र मानसिक शक्ति को ही हिप्नोटिज़्म (hypnotism) या मैसमरिज़्म (mesmerism) भी कहा जाता है।

किसी की **'बुरी नज़र'** लगना तो आम बात मानी जाती है, यह भी **तीव्र जलन** (intense jealousy) **की शक्ति का ही प्रदर्शन है।** इसी प्रकार ज्यों – ज्यों हमारी वृत्ति किसी केन्द्र पर एकाग्र होती जाती है, त्यों – त्यों हमारे मन की शक्ति तीक्ष्ण होती जाती है। इसी प्रकार सिमरन करते हुए जब मन एकाग्र होता है, तो मन की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्रकृति के साधारण नियमों पर हावी हो जाती है तथा इस शक्ति द्वारा 'वर – श्राप' या 'वाक् – सिद्धि' के चमत्कार देरवे जाते हैं।

यदि **'नज़र लगने'** के अचम्भे को आम माना जाता है तो **'मन की शक्ति' द्वारा 'वर', 'श्राप' तथा रिद्धियों – सिद्धियों का प्रकटाव भी सही होता है।**

यह **दामनिक शक्ति** मन की **एकाग्रता से उत्पन्न होती है।** यदि यह मानसिक शक्ति प्रकृति पर हावी होकर **प्रकृति के नियम बदल सकती है** तो इसका प्रभाव, दूसरों के कमज़ोर **'मन' पर पड़ना भी अनिवार्य है।**

यह मानसिक शक्ति, एकाग्रता तथा सिमरन द्वारा बेअन्त दर्जे तक **बढ़ाई जा सकती है।** यह मानसिक शक्ति दूसरों के मन को **कायल करने, या बदलने,** या प्रचार करने का बहुत ही **सरल, सादा तथा शीघ्र प्रभावित करने वाला साधन है।** इस प्रकार जब हम किसी की संगत करते हैं तो हमारे मन पर **एक–दूसरे का प्रभाव** होना अनिवार्य है। **अभ्यास द्वारा एकाग्रित हुए मन का अधिक शक्तिमान होने के कारण, दूसरों के कमज़ोर मन पर असर होना अवश्य तथा अनिवार्य है।**

ख्यालों या धारणाओं का **'परिवर्तित होना'** निम्नलिखित नियमों पर निर्भर है–

1. प्रचारक के **निश्चय या श्रद्धा में दृढ़ता**
2. जिज्ञासु के मन की **'रंगत'**
3. जिज्ञासु के मन की **ग्रहणशक्ति**
4. प्रचार के साधन की **प्रणाली।**

प्रचारकों के **प्रचार का असर** उन के **'रहन–सहन' तथा जीवन** पर निर्भर करता है। यदि उनका तन, मन, चित्त, बुद्धि तथा आत्मा एक सुर में हो, तब ही उनके हृदय में श्रद्धा–भावना तथा दृढ़ता आ सकती है और उनकी **कथनी–करनी** का प्रभाव दूसरों पर पड़ना अनिवार्य है।

परन्तु हमारी तो **'मन होर–मुख होर' वाली दशा होने के कारण हमारा कहा–बोला सुनाया, व्यर्थ चला जाता है और सफल नहीं होता।** यदि थोड़ा–बहुत असर होता है, तो वह भी थोड़े समय के लिए, **नाममात्र** ही होता है तथा श्रोताओं की दृढ़ धारणओं (conceived ideas) को **परिवर्तित नहीं कर सकता।** हमारा प्रचार **'बुद्धि मंडल'** में से उत्पन्न होने के कारण उसका असर भी **बुद्धि मंडल** तक ही **सीमित** रहता है, **जो क्षण भर के लिए,** नाम मात्र सा होता है तथा हमारे मन की गहराइयों, अन्तः करण या **'जीवन' को नहीं छू पाता।**

मनोवैज्ञानिकों (psychologists) ने परिणाम निकाला है कि हमारा मन जो असर बाहर से ग्रहण करता है, उसमें 90% असर **'शख्सी संगत'** की छुह

(personal infection) का होता है और बाकी केवल 10% प्रभाव ही लिखित या मौखिक प्रचार का हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हम पाठ–पूजा–लैक्चर–कथा आदि बहुत सुनते तथा सुनाते हैं, और बेअंत धार्मिक पुस्तके पढ़ते हैं, परन्तु हमारे मन पर इनका बहुत कम प्रभाव होता है या **थोड़े समय के लिए नाममात्र** ही होता है तथा **इतना पढ़–सुन कर भी हमारे जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता।**

पड़े सुने किआ होई।। जउ सहज न मिलिओ सोई।। (पृ. ६५५)

पड़णा गुड़णा संसार की कार है अंदरि त्रिसना विकारु।। (पृ. ६५०)

पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ।। (पृ. ३९)

रेडियो स्टेशन से किसी विशेष मीटर पर आवाज चलती है तथा उस ही मीटर पर हम अपने रेडियो को सुर करते हैं, तब ही वह आवाज़ हमें सुनाई देती है। यदि हमारा रेडियो खराब हो या उसके संबन्ध अथवा कनैक्शन (connection) में नुक्स पड़ जाये, तो उसी मीटर (wave length and cycle) पर होते हुए भी हमारा रेडियो उस ध्वनि को नहीं पकड़ता या उसकी आवाज़ बहुत धीमी व बेसुरी होगी। यदि इस ध्वनि के वेव लैंग्थ (wave length) की शक्ति तीव्र हो तो वह वातावरण को चीरकर बहुत दूर तक अपना असर डालती है। यही वैज्ञानिक नियम हमारे ख्यालों या मन पर लागू होता है। जिस मीटर (wave length and cycle) पर हमारे अन्दर ख्याल चलते हैं उसी मीटर पर, किसी दूसरे मन पर, उनका असर होता है। अभ्यास किए हुए शक्तिमान मन से उत्पन्न हुए ख्याल कमजोर मन पर सहज–स्वभाव ही गहरा तथा दृढ़ असर डालते हैं। कभी–कभी वायुमंडल खराब होने (Atmospherical disturbances) के कारण रेडियो की ध्वनि में विघ्न पड़ जाता है तथा भली–भांति साफ सुनाई नहीं देता। इसी प्रकार यदि हमारे मन में ख्यालों का कोलाहल मचा हो तो भी दूसरों के दामनिक ख्यालों का असर कम या धुंधला हो सकता है।

यदि लोहे की जंग लगा हो तो उस पर चुंबक (magnet) का असर बहुत कम या बिल्कुल ही नहीं होता और वह आकर्षित नहीं होता। इसी प्रकार यदि लोहे पर

कोई परत (galvanization) चढ़ी हुई हो, तो भी उस पर कोई रंग नहीं चढ़ सकता। स्थूल वस्तुओं के असर ग्रहण करने का यह नियम ख्यालों पर और भी सूक्ष्म तथा गहरे रूप में प्रवृत्त है।

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु।।
खनली धोती उजली न होवई जे सउ धोवणि पाहु।। (पृ. ६५१)

हमारे मन पर अनेक जन्मों से मैल या जंग की परतें चढ़ी हुई हैं, इसलिए उस पर **'कोमल दैवीय रंग'** चढ़ना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

हमारे मन पर पिछले जन्म के संस्कारों के गहरे रंग के अतिरिक्त इस जन्म में भी भांति – भांति की संगत द्वारा ग्रहण किए हुए खास निश्चयों की परत इतनी तीव्र चढ़ी हुई है, कि हम अन्य किसी नए ख्याल का असर लेने में असमर्थ हैं या तैयार ही नहीं हैं।

इसी प्रकार कई बार हम पुराने दृढ़ निश्चय की कैद में (closed mind) होते हैं तो इस 'ख्याली कोठड़ी' (mental cone) में ही इतने संतुष्ट और अभिमानी हो जाते हैं, कि अन्य किसी की कोई अच्छी या लाभदायक बात सुनने के लिए भी तैयार नहीं होते, अपितु अपने अपूर्ण गंदले निश्चयों को दूसरों पर जबरदस्ती ठूँसना चाहते है। इसीलिए संसार में धर्म के नाम पर इतने वाद – विवाद, तअस्सुब, घृणा, झगड़े, लड़ाइयां तथा अत्याचार होते हैं।

यह जन्म – जन्मों की मैल या परत, या स्वयं रचित ख्यालों की कैद (mental cone) में से निकलने के लिए बहुत समय तथा प्रयास की आवश्यकता है। वह भी यदि हमें अपनी त्रुटिओं का **अहसास** हो और उन्हें त्यागने की **चाहत** हो। दृढ़ की हुई धारणाओं में हम इतने **जबरदस्त जकड़े हुए हैं,** कि इन्हें छोड़ने की **आवश्यकता भी नहीं अनुभव करते, प्रयत्न तो क्या करना है**। यही कारण है कि इतने पाठ – पूजा तथा कर्म – कांड करते हुए और ज्ञान घोटते हुए भी हमारे मन पर इनका नाममात्र असर ही होता है, जो शीघ्र ही अलोप हो जाता है तथा हमारे जीवन में कोई **परिवर्तन नहीं आता** तथा हम पुरानी दृढ़ हुई धारणाओं के वेग में ही बहते जाते है।

धरती में प्राकृतिक आकर्षण (gravity) है, जिस कारण हर वस्तु धरती की ओर आकर्षित होती है, तथा किसी वस्तु को ऊपर ले जाने के लिए ताकत की आवश्यकता है, जिस द्वारा पहले धरती के आकर्षण को समाप्त (neutral) किया जाए तथा साथ ही साथ ऊपर की ओर **'धकेलने की शक्ति'** (pushing force) भी हो। इसी प्रकार हमारे मन की रुचि, माया की आकर्षण शक्ति द्वारा नीचे की ओर **सहज ही खिंची जा रही है।** इसलिए मन अपनी रंगत अनुसार तुच्छ मायिकी असर तो शीघ्र ग्रहण करता है, परन्तु उच्च दैवीय असर ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा, प्रयत्न, दृढ़ता तथा कठिन परिश्रम की आवश्यकता है, जो कि **उच्च दामनिक साध संगत की प्रेरणा तथा सहायता के बिना अपने आप हो ही नहीं सकती।**

जिस प्रकार चुम्बक (Magnet)का आकर्षण, लोहे की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है। उसी प्रकार साध संगत या गुरबाणी का **असर ग्रहण करना हमारे मन की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है।**

हमारे मन पर जितनी मायिकी मैल, जंग अथवा दृढ़ हुई गलत धारणाओं की ''परत'' चढ़ी होगी, उतना ही हम दैवीय गुण या आत्मिक रस ग्रहण करने में असमर्थ होंगे तथा ज्यों–ज्यों हमारा मन तथा अन्तः करण निर्मल होता जाएगा, त्यों–त्यों ''साध संगत'' तथा गुरबाणी का असर ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाएगी।

भोले भाइ मिले रघुराइआ।। (पृ. ३२४)

इसी कारण गुरबाणी में कुसंगति से बचने की ताकीद की गई हैं, तथा बुद्धि की उक्तियों–युक्तियों और चतुराईयों का प्रयोग वर्जित किया गया है–

तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ।। (पृ. २८१)

एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु।। (पृ. ६४६)

हमारे धार्मिक प्रचार का तात्पर्य यही है कि जीव ''माया नागिनी'' या शैतान के भ्रम–भुलाव से बचें तथा दैवीय गुण ग्रहण करके ईश्वर की समीपता प्राप्त करें। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो साबित होगा कि आदिकाल से ही इतने

भांति – भांति के प्रचार के बावजूद दुनिया पहले की अपेक्षा माया के भ्रम – भुलाव में और **गहरी धंसती जा रही है,** तथा दुनिया वैर – विरोध, ईर्ष्या – द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, लड़ाई, झगड़े तथा अत्याचार से मची आग की लपटों में गलतान तथा दुखी होकर त्राहि – त्राहि कर रही है।

परमात्मा ने "कवाउ" द्वारा संसार की उत्पत्ति की, तथा इसमें अपनी ज्योंति प्रविष्ट करके, अपने "अंश रूप जीवों" के मनबहलाव तथा जीवन – आधार के लिए इतना विशाल माया का विराट – नाटक रच दिया। माया के भ्रम – भुलाव में खचित होने से बचाने के लिए तथा अपनी स्नेहमयी और प्यारी इलाही गोद की ओर पुनः प्रेरित करने के लिए युग – युगों से गुरू, पैगम्बर, साधु, संत, गुरमुख प्यारे, महा – पुरुष इस दुनिया में आये, जिन्होंने दैवीय गुणों का प्रचार करने के लिए भिन्न – भिन्न धर्म चलाए तथा अपनी बाणी की रचनाएं छोड़ गए। परन्तु हम उनके अनुयायी अपने अहम् के अधीन, चतुराईयों द्वारा, उनकी शुभ आत्मिक शिक्षाओं को तोड़ – मरोड़ कर अपने – अपने मन की रंगत चढ़ा कर (misinterpret) एक पक्षीय या अधूरा प्रचार करते रहे। परिणाम स्वरूप जनता में धर्म के विषय में शंकाएं तथा भ्रम – भुलाव कम होने की अपेक्षा बढ़ते ही गए तथा हमारे अन्दर दैवीय गुण प्रविष्ट होने की अपेक्षा ईर्ष्या, द्वेष, तअस्सुब, घृणा, वैर – विरोध तथा अन्य अनेक **राक्षसी अवगुण** बढ़ते जा रहे हैं।

इस अधोगति के मूल कारण निम्नलिखित हैं –

1. धर्म की धारणाओं पर अपने **मन की रंगत चढ़ा कर** गलत या अधूरा प्रचार करना।

2. धर्म के **आत्मिक तत्व को भुला कर, केवल बाहरी, शारीरिक क्रिया** और कर्म – कांड तक सीमित रहना।

3. धर्म को केवल प्रचार करने का विषय या शुगल ही समझना तथा अपने **निजी जीवन में ढालने की आवश्यकता न समझना।**

4. आत्मिक फल दाता की कृपा या **गुर प्रसाद से बेखबर या श्रद्धाहीन होना।**

उपरोक्त समस्त विचार धर्म संबन्धी मानसिक तथा दिमागी 'क्रिया' तक सीमित है जो त्रिगुणों के दायरे के अन्दर 'मायिकी मंडल' का खेल है तथा **अहम् की प्रतिछाया के अधीन कर्म या यत्न हैं।** त्रि – गुणों से अलग, **अहम्रहित 'आत्मिक खेल' भिन्न है।**

सिमरन वाले अभ्यास किए मन की तीक्ष्ण, सूक्ष्म किरणों का एक–दूसरे पर चुपचाप, अनजाने, सहज–स्वभाव अपने–आप असर हो जाता है। **'छुह'** (infection), जिसके विषय में दोनों पक्षों को पता ही नहीं लगता, कि उनकी **अन्तर–आत्मा में 'लेन–देन'** (communion) **या व्यापार कब और कैसे हो गया।** वह केवल यही अनुभव करते हैं, कि उनके पुराने 'अहम्ग्रस्त' मायिकी मन में अचानक कोई परिवर्तन आया है, तथा उनके जीवन में कोई–नया प्रकाश, नया अनुभव, नया रंग, नई खुशी, नया चाव, नया उल्लास, नई श्रद्धा, नई भावना, नया प्रिम–रस, नई मस्ती, नई जीवन–रौं तथा शबद की झंकार ताने–बाने में, ओत–प्रोत, **धँस–बस–रस कर प्रविष्ट हो गई** है तथा उनका आत्मिक मंडल में **'नया जनम'** हो जाता है। वह अब दैवीय रंग से सुसज्जित हुआ 'खालसा' बन जाता है।

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।। (पृ. २०४)

साध कै संगि नही कछु घाल।।
दरसनु भेटत होत निहाल।। (पृ. २७२)

इसीलिए गुरबाणी में **'साध संगति'** अथवा **'सत् संगत'** करने की ताकीदी **प्रेरणा** दी गई हैं–

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम।। (पृ. १२)

किरपा करे जिसु पारब्रहमु होवै साधू संगु।।
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ हरि सिउ रंगु।। (पृ. ७१)

साधसंगति निहचउ है तरणा।। (पृ. १०७१)

आदिकाल से ही यह अदृष्य **'इलाही मर्यादा'** चली आई है, तथा अब भी यही **'दैवीय मर्यादा' गुप्त–रूप में काम कर रही है।**

वास्तव में यह त्रि–गुणों के 'मानसिक–मंडल' से ऊपर उठ कर **'आत्मिक प्रकाश मंडल' की ओर चढ़ना या परिवर्तन है।**

हमारा धर्म प्रचार बुद्धि मंडल से उत्पन्न होने के कारण, श्रोताओं के **बुद्धि मंडल तक ही कारगर** हो सकता है, तथा बुद्धि मंडल या त्रि–गुणों के **दायरे से**

ऊपर नहीं ले जा सकता, केवल चौथे पद – 'आत्मिक मंडल' की **टोह या सीध** ही दे सकता है।

त्रि–गुणों से ऊपर उठ कर चौथे पद या 'आत्मप्रकाश मंडल' में प्रवेश करने के लिए बाहरमुखी, कर्म कांड वाले धर्म **सहायक** हो सकते हैं **तथा सीध** देते हैं। यह **सफर** तो है, पर **मंज़िल** नहीं।

'आत्म प्रकाश' या **"नाम मंडल"** में प्रविष्ट होने के लिए **"अनुभव प्रकाश" अनिवार्य है।** यह 'अनुभव प्रकाश' सतिगुरू जी की **"दात"**, **"छुह"**, **"कृपा"** तथा **"गुरु प्रसाद"** है। हमारे कर्म कांडो के सहारे या हमारे 'जोर' से इसकी प्राप्ति असम्भव है।

जोरु न मंगणि देणि न जोरु।। (पृ. ७)

आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ।। (पृ. १५६)

यह इलाही **"दात"**, **"छुह" या "खमीर"** लगातार साध संगत तथा अटूट सिमरन की कमाई द्वारा "गुरु–प्रसाद" (Grace) का फल है। **"अमृत" छकाने की मर्यादा इसी "खमीर" के नियम की प्रतीक और संकेत है।**

यह ही वास्तविक, दामनिक, सदैवीय **जीवन परिवर्तित करने वाला, इलाही 'धर्म प्रचार' है, जो धुर से इलाही "हुकुम" अनुसार अदृश्य, चुपचाप, गुप्त ही चल** रहा है। जब किसी अभिलाषी जीव पर सतिगुरु जी की "नदरि करम" (कृपा दृष्टि) होती है तो उसके सूक्ष्म हृदय की तारों को जा छूती है, तथा उसकी **अन्तर–आत्मा में अपने आप ही सहज स्वभाव "इलाही राग" की धुन छिड़ जाती है,** जिसे सुनकर उसका मन **"अलमस्त मतवारा"** होकर कह उठता है–

अब मोहि जीवन पदवी पाई।। (पृ. १०००)

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद।। (पृ. १२२६)

(क्रमशः)